पापा, सौ मिलियन मिलने के बाद तुम्हारी परेशानियाँ बढ़ ही जायेंगी। लेकिन यह बड़ी बात है कि तुम्हारे मन में अब भी यह इच्छा बची हुई है। कितने ऐसे लोग मिलेंगे जो तुम्हारी उम्र तक पहुँचते-पहुँचते इच्छाओं से खाली हो जाते हैं। तुम्हारे पास सौ मिलियन फोरेन्त खर्च करने की योजना भी होगी। क्योंकि हर लाटरी खेलने वाले के पास इस प्रकार की योजना होती है। तुम्हारे पास योजना है तो तुम सोचते हो अपने बारे में, परिवार के बारे में, लोगों के बारे में। यह बहुत है पापा, बहुत है। अच्छा पापा, एक बात पूछूँ? कान में ताकि कोई और सुन न लें। ये बताओ कि यह इच्छा-मतलब लाटरी निकल आने की इच्छा कब से है तुम्हारे मन में? क्या मंदी के दिनों से है जब तुम जवान और बेरोजगार थे? या उस समय से है जब जर्मन और रूसी गोलियों से बचने तुम किसी अँधेरे तहखाने में छिपे हुए थे? क्या यह इच्छा उस समय भी थी तुम्हारे मन में जब तुम विजयी लाल सेना का स्वागत कर रहे थे? बाद के दिनों में क्रांति के गीत गाते हुए या सहकारी आंदोलन में रात-दिन भिड़े रहने के बाद भी तुम यह सपना देखने के लिए थोड़ा-सा समय निकाल लेते थे? माफ करना पापा, मैं ये सब इसलिए पूछ रहा हूँ कि ऐसे सपने देखना कोई बुढ़ापे में शुरू नहीं करता है न?

असगर वज़ाहत

जन्म : 5 जुलाई, 1946, फतेहपुर (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन : मैं हिन्दू हूँ, दिल्ली पहुँचना है, स्वीमिंग पुल, सब कहा कुछ (कहानी संग्रह)सात आसमान, कैसी आगी लगाई, रात में जागने वाले, पहर-दोपहर, मन माटी, चहारदर, फिरंगी लौट आए, जिन्ना की आवाज, वीरगति, समिधा (उपन्यास) जिन लाहौर नहीं देख्या (नाटक)

सम्मान : साहित्यकार सम्मान (हिन्दी अकादमी), इंदुशर्मा कथा सम्मान, कथाक्रम सम्मान

अपराध

-संजीव

रात के खौफनाक अँधेरे को चीरते हुए मेरी ट्रेन भागती जा रही है। एक अँधेरी सुरंग है कि मेरे समूचे अस्तित्व को निगलती जा रही है। यूँ मैंने सारी खिड़कियाँ बंद कर ली हैं, फिर भी एक शोर है कि जिस्म के पुर्जे-पुर्जे धमक रहे हैं, यादों का एक काफिला है कि मेरे मरु-मन का जर्रा-जर्रा कुनमुनाकर ताकने लगता है।

जेहन में धीरे-धीरे आकार ले रही है एक हवेली...कस्बे में व्यवस्था और सत्ता की प्रतीक मेरी हवेली-'कंचनजंघा'। धीरे-धीरे कई चेहरे उभर रहे हैं, प्रभुसत्ता रोबीले सेशन जज-पापा, एस.पी. - बड़े भैया, जिलाधीश-छोटे भैया, गृह विभाग के सचिव-जीजा, उनके प्रभाव का एहसास कराती हुई गवीली बहन, सबके अपने-अपने पोस्टेड जिलों में चले जाने पर उदास राजमाता की तरह मम्मी, न जाने कितने मंत्रियों, अफसरों और ऊँचे ओहदे वालों के गड्डमड्ड चेहरे! एक अजीब-सा खिंचाव, एक अजीब-सा खौफ समाया रहता है यहाँ के लोगों में कंचनजंघा के प्रति। मैंने बचपन से ही इस खिंचाव का अनुभव किया है। कपड़े की बॉल और पीढ़े का बल्ला बनाकर खेले जा रहे क्रिकेट या कॉच की गोलियों जैसे खेल, गवर्नेस, खानसामा, दाइयाँ, ट्यूटर्स, सेंट-विसेंट और सेंट पैट्रिक्स स्कूलों में पलते मेरे वजूद को देखकर थम जाते और वे मुझे टुकुर-टुकुर ताकने लगते। ऐसा लगता, मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ इतर, कुछ विशिष्ट बनाने का षड्यंत्र चल रहा है और एक अस्वीकार समाता रहा अवचेतन में। पापा कहते, 'जाने किस धातु का बना है!' पूरे परिवार में 'सिद्धार्थ' की उपाधि से मैं आभूषित था।

'खैर, एक लड़का ऐसा ही सही!' और माँ सबकी चिंताओं पर स्टॉप लगा

दिया करतीं।

प्रेसिडेंसी कॉलेज में दाखिले के बाद पहली बार परिवार की तमाम बंदिशों से मिली आजादी, जगह-जगह दीवारों पर लिखे-पॉलिटिकल पावर फ्लोज फ्रॉम द बैरेल ऑफ द गन!...नक्सलबाड़ीर पोथ आमादेर पोथ! ...जैसे नारे। माओ की लाल किताब, कॉलेज स्ट्रीट के फुटपाथों तथा कॉलेज स्क्वायर पार्क के 'गोलदीघी' के होने वाले हेतमपुर, विद्यासागर, यादवपुर, शिवपुर इंजीनियङ्करग कॉलेज के छात्रों के बीच के घुमन्तू चर्चे! ...ऐसे गर्म-परिवेश में पकने लगा था मेरा झिझक-भरा शांत व्यक्तित्व। कुछ ही दिनों में मन के अवचेतन में दबा अस्वीकार सर उठाने लगा। क्लास तो हम नाममात्र को करते। हाँ, इस बीच बहुत-सा बाहरी साहित्य पढ़ने को मिला। मार्क्स, ऐंगेल्स, हेगेल, लेनिन और माओ पर विस्तृत चर्चाओं में शामिल होने का मौका मिला और बुर्जुआ, पेटी बुर्जुआ, रिवीजनिस्ट, प्रतिक्रियावादी, होमोसेपियंस, लाल सलाम आदि नए-नए शब्द आ जुड़े मेरे शब्दकोश में और इन्हीं के साथ-साथ परिचय के फैलते दायरे में आ जुड़ा सचिन-संघमित्रा का परिवार, जहाँ अकसर ही मेरी शामें गुजरने लगीं। उनके पिता 'कल्याणी सेनिटोरियम' में क्षय का उपचार करा रहे थे और उनकी अनुपस्थिति हमारे लिए वरदान साबित हो रही थी। कभी-कभी हमारे वाद-विवाद अतिरेक में इतने तीव्र हो उठते कि बगल के कक्ष में पढ़ती हुई संघमित्रा गुस्से से उफनती हुई, भड़भड़ाकर किवाड़ खोलकर, धम-धम पाँव पटकती हुई हमारे बीच आ खड़ी होती, 'आई से स्टॉप दिस नॉनसेंस! अपने कैरियर के साथ-साथ मेरा कैरियर भी ले डूबेगा। बुलबुल!' सचिन को वह उसके बुलाने वाले नाम 'बुलबुल' से ही बुलाया करती थी... और हम सन्नाटा खींच लिया करते। वार्तालाप की चिंन्दियाँ बिखर जातीं।

वह मेडिकल की ओर मेधावी छात्र थी, सचिन से एक साल बड़ी होने का लाभ उठाकर गार्जियन की तरह डाँटा करती। इम्तिहान वगैरह के चक्कर न होते तो वह दरवाजे पर खड़ी-खड़ी हमारी बातें सुनती और मूड में आने पर हमारी पूरी बटालियन पर अकेले ही तिलमिला देने वाला सधा वार करती, 'जो अपना कैरियर नहीं बना सका, वह सोसाइटी और देश का क्या बनाएगा?'

'दीदी, तूमी बूझबेना। एइजे पूँजीवादी, सोमोन्तोवादी शिक्षा-व्योवस्था...!'

'चुप कोर! प्रोतिभा थाकले जे कोने जाएगा थेके स्कोप कोरे नेवा जाए आर ना थाकले...'

'थाक! थाक!'

और दोनों भाई-बहन मुँह फुला लिया करते।

उन दिनों संघमित्रा को मैं कनखियों से देख लिया करता और यदाकदा वह इसे मार्क कर लिया करती। मगर किसी बेतकल्लुफी के अभाव में उसका अस्तित्व मेरे मन में अँखुआ नहीं पाया था। आखिर वह झिझक भी टूट गई 'दीघा' की पिकनिक पर। वहाँ पहली बार मैं उसके व्यक्तित्व के सौंदर्य के घटक पर अभिभूत हुआ।

मैं पानी के अंदर जाने से डर रहा था और वह ताने दे बैठी थी, 'यह हिम्मत है और चले हो बगावत करने!' मैंने बताया, 'मेरी मम्मी को किसी साधु ने बताया था कि मेरी मौत पानी में होगी। इसीलिए वहाँ पास ही गंगा और यहाँ गोलदीघी के पास रहकर भी तैरना सीख नहीं सका आज तक।' वह हँसते-हँसते गिर पड़ी थी मेरे बदन पर, '...ओह! ...ओह!! ...डोण्ट माइंड!' फिर सचिन को इशारा करते हुए बोली, 'एई जे तुमार 'जोद्धारा' ...की बोलो तोमारा ...लाल सिपाई!' सचिन अपनी शिकस्त से उबरने के लिए बोला, 'दीदी कितनी बड़ी 'जोद्धा' है... जानते हो? पहली बार लैब में मुर्दे की चीर-फाड़ देखकर बेहोश हो गई थी।' - 'सच!' मैंने चिढ़ाया तो वह छिछले पानी में मुझे ढकेलती हुई मारने दौड़ पड़ी।

'सत्ता पा जाने पर तुम भी वैसे ही ढल जाओगे... जे जाय लोंका, सेइ होय रावोन!' आँचल निचोड़ते हुए वह कहने लगी, 'देखती हूँ, बड़े आए हो खूनी क्रांति करने वाले, समाज और व्यवस्था बदलने वाले, डिस्पैरिटी मिटाने वाले! अरे, मैं कहती हूँ, चूल्हे में डालो मार्क्स, लेनिन, माओ, चाओ को! आदमी अपनी प्रवृत्ति से ही हिंसक होता है, अपराधवृत्ति खत्म करनी है तो जींस बदल डालो... जींस!'

पूजा की छुट्टियों में घर आया तो पापा सारा-कुछ सूँघ बैठे थे। आते वक्त उन्होंने साफतौर पर मुझे बता दिया कि पढ़ना है तो ढंग से पढ़ो, वरना छोड़कर चले आओ। मम्मी ने तो मुझसे आश्वासन ही ले लिया कि मैं अपने पाँव डगमगाने नहीं दूँगा। लेकिन कलकत्ता आने पर 'फिर बेताल डाल पर' वाली बात हो जाया करती। मैँ न भी जाता तो संघमित्रा मुझे हॉस्टल में ही बुलाने चली आती। मैं जब कहता, 'विरोक्तो कोरो न रानी!' (उसका पुकारने का नाम रानी था) तो वह ठिठोली कर बैठती, 'एसो आमार राजकुमार, एसो ना!' और मेरी मोर्चाबंदी भरभराकर गिर जाती।

मेरे साहित्यिक रुझान पर दोनों ही कुढ़ा करते। सचिन बिगड़कर बोलता, 'भावुकता, चेतना का अपव्यय है, डिस्ट्रैक्शन है। ये लफ्फाज, कामचोर, माटी के शेर, क्रांति का साहित्य लिखने वाले इन लोगों को फील्ड में ले जाया जाए तो पेशाब कर दें। इन सबों को खेतों और फैक्टरियों में लगा देना चाहिए!' फिर वह वियतनाम, कम्बोडिया,

लाओस, कोरिया, चिली, क्यूबा, रूस, चीन आदि की बातें ले बैठता। संघमित्रा तो अकसर इससे भी बुरी खिंचाई पर उतर आती, 'तुम्हारे जैसे नाइंटी परसेंट साहित्यकार घोर कामी, सुविधावादी और भ्रष्ट होते हैं। तुम तो विभीषण हो इस दल में... बन सकोगे मुकुंद दास... छेड़े दाउ बोंगो नारी, आर पोड़ो ना रेशमी चूड़ी... यू आर ए पेटी बुर्जुआ!'

'देखते जाओ... मेरा पहला वार होगा मेरी हवेली पर...!' मैं कॉलर हिला दिया करता और इस पर दोनों हँस पड़ते।

धीरे-धीरे सचिन की गतिविधियाँ बढ़ती गईं। इस बीच 'खत्म करो' अभियान भी चल निकला। दो-एक बार वह मुझे भी उत्तरी बंगाल के गरीब किसानों बीच व्यवस्था से मोहभंग कराने के उद्देश्य से ले गया। हड्डियों पर मढ़े हुए चाम। धँसी पनीली आँखें, मैले-चिथड़े, शोषण की जड़ तक देखती हुई मेरी दृष्टि पारदर्शी हो उठी। अगर मैं नक्सल नहीं हुआ तो संघमित्रा की वजह से, जो वहाँ से लौटने पर मेरी नजर उतारने के लिए नेशनल म्यूजियम, ट्रॉपिकल मेडिसिन, ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिकल हाइजिन एण्ड मेडिकल साइंसेज या और नहीं तो गंगा के किनारे पडे बैंचों पर बैठाकर मुझे जीवों और सभ्यता का विकास समझाया करती। बातों ही बातों में उसने एक दिन बताया था कि वह सचमुच खोज करना चाहती है जींस पर और एक उत्साही निरपेक्ष अध्यापक की तरह बिना लज्जा के जेनेटिक्स और मनुष्य के अंग-प्रत्यंग की बहुत-सारी बातें बता डाली थीं।

सचिन ने बाद में क्लासें करना छोड़ ही दिया था। मैंने संघमित्रा से शिकायत की तो उसके आते ही वह फट पड़ी, 'क्यों रुलाते हो बुलबुल! जानते हो, बाबा टी.बी. के पेशेंट हैं, मैं उन्हें यह सब बता नहीं सकती। इसीलिए न...!' लेकिन सचिन को न रानी के आँसू रोक पाए, न परिवार की जिम्मेदारी। थ्योरेटिकल परीक्षाओं में भी वह अनुपस्थित रहा तो आखिरी पर्चा देते ही पता करने उनके घर जा पहुँचा। शाम की मरकरी नियोन की शोख बत्तियाँ जल उठी थीं सड़कों पर। मगर उस मकान में मात्र धुँधली रोशनी मातम-सी बरस रही थी।

'दीदी तोमाके जेतेड़ होवे!' सचिन रानी से अनुनय कर रहा था, 'और हात-टा एक बारेकई उड़े गेछे। होय तो ब्लीडिंग होयेई मारा जाबे।'

'आर काउ के पाओ नी?' रानी बोली।

'काउ के नीये गेले सोबी फास होये जाबे जे...'

फिर मेरे कंधे पर हाथ रखकर, 'वेट टिल आई रिटर्न!' कहकर रानी जो गई तो

आज तक इंतजार कराती रही।

बाद के चंद साल संक्रमण के साल रहे। टेररिस्ट सचिन पर तरह-तरह के मुकदमों के फंदे लटक गए थे और संघमित्रा का नाम पार्टी के प्रवर संगठनकर्ताओं में गिना जाने लगा था। उसके विषय में तरह-तरह के मिथ प्रचलित हो चले थे... कि खून करने में उसे कैसी खुशी होती है!... अब फलाँ-फलाँ पूँजीपति, राजनेता, अफसर और पार्टी के विश्वासघातक उसकी सूची में है!... फलाँ-फलाँ घूसखोर अफसर और ऊँची फीस लेने वाले डॉक्टर और वकील को तो धमकी का खत भी आ चुका है!... एक मुर्दे को चीरते देखकर बेहोश हो जाने वाली संघमित्रा कहाँ से कहाँ पहुँच गई थी!

मेरी स्थिति कुछ विचित्र थी। पापा ने जबरदस्ती 'प्रेसिडेंसी' छुड़वा दिया था। साइंस छोड़कर, आर्ट्स लेकर सोशोलॉजी में मैं एम.ए. कर चुका था और कई तरह के संकर संस्कार मुझे आधा तीतर, आधा बटेर बनाकर छोड़ गए थे। घर की समृद्ध परंपरा छोड़कर मैं यूनियन लीडरी, समाज-सेवा और प्राध्यापकी-तीनों को ही अपने प्रयोग का क्षेत्र बनाए हुए था। संघमित्रा से मिलने के लिए मैंने टाटा के जादूगोड़ा के जंगल, आंध्र के जंगल और धान के खेत, मध्य प्रदेश के बीहड़... कहाँ के चक्कर नहीं लगाए। मगर तब तक शायद वह भावनाओं, आवेगों से ऊपर उठ चुकी थी। शायद मेरी यूनियन, सोशल सर्विस और लेक्चररशिप हताशा के जख्म को ढकने के साधन-मात्र थे। माँ ने साफतौर पर ऐलान कर दिया था कि मुझे हर हालत में उनके पास रहना है। इतनी बड़ी हवेली अकेले भाँय-भाँय करती है और मैं हर हालत में वहाँ बना हुआ था। पिताजी कूड़े से भी काम लायक चीजें निकाल लिया करते थे। यह उनकी बणिक-बुद्धि कहूँ या विलक्षण बुद्धिमत्ता, वह हर चीज को कैश कराना जानते थे। अपने स्वभाव के विपरीत मुझे उन्होंने आड़े-उलटे प्रोत्साहन देना शुरू किया। उनकी कृपा से प्रारम्भिक चरणों में ही सफलताएँ मिलती गईं और अब मैं कई यूनियनों का अध्यक्ष बन बैठा था। लेकिन पापा के लिए ये मात्र मील के पत्थर थे-मंजिल नहीं। उनका इरादा था कि आगामी चुनावों में मुझे कहीं से खड़ा करवा देंगे। शायद प्रान्तीय या केंद्रीय नेतृत्व के सामने की पंक्ति में आने की जो रिक्तता मेरे अक्षय-वट परिवार में में रह गई थी, वह मुझसे पूरी की जानी थी। लेकिन इन सबसे उदासीन रहकर जब मुझे अपनी लेक्चररशिप और यूनियन वगैरह में ज्यादा व्यस्त पाने लगे तो एक दिन ब्रेनवाश के लिए मेरे सोशोलॉजी विभाग के हेड के हाथों एक नए पर्चे के रूप में उनकी नई योजना सामने थी।

'इस पर साइन कर दो।' वो बोले।

'यह क्या है?'

'तुम्हें शोध करने की अनुमति देने के लिए दरख्वास्त...मेरे गाइडेंस में।'

'लेकिन...!' मैं उलझन में पड़ गया।

'बिला वजह माथापच्ची कर रहे हो। विषय तुम्हारे परिवार के लोग रोज ही मथा करते हैं। तुम्हें बस इतना करना है कि पुरानी थीसिसें देख-सुनकर कुछ नए नोट्स जोड़कर लिख डालना है।'

'कौन-सा विषय है?' मैं उत्सुक हुआ।

'क्राइम!'

न जाने क्यों अंग्रेजी का यह शब्द सुनते ही बहेलिए द्वारा मिथुन-युगल क्रोंच को मारने की दर्दनाक और दहशत-भरी आवाज कानों में घुल उठती है...जैसे परिन्दों के शोर से जंगल गूँज उठा हो और टप-टप ताजा रक्त टपक रहा हो।

मैंने अतिरेक में उनका हाथ पकड़ लिया, 'मैं करूँगा, जरूर करूँगा मगर एक शर्त... थीसिसें देख-सुनकर नहीं, स्वयं स्वतंत्र सर्वेक्षण और अध्ययन करके।'

'ठीक है।' इस बार सामने बैठे पापा स्वयं बोल उठे। सामयिक रूप से मेरा ध्यान हटा पाने में सफल होकर वे राहत की नि:श्वास फेंक बैठे थे।

अपराध और अपराधी की प्रकृति और प्रकार, व्यक्तिगत और परिवेशगत संस्कार और उद्दीपनाएँ, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय विवेचन और विश्लेषण करने हेतु मैं एक थाने से दूसरे थाने की फाइलों में बिखरी आँकड़ों की सांख्यिकी में भटक रहा था कि एक दिन एक थाने के बाहर सचिन के पिता राखाल बाबू ने पकड़ लिया। वे काफी बदहवास लग रहे थे। उन्होंने बताया कि... अभी-अभी सचिन को पकड़कर इसी थाने में ले आया गया है। बहुत मारा है, पुलिस ने... कहते हुए आँखों से आँसू गिरने लगे उनके। मैंने दारोगा को अपना परिचय देते हुए इस मामले में सहानुभूति बरतने का अनुरोध किया। दारोगा मुझे लिए-लिए अंदर आए। सचिन को उनके कमरे में ले आया गया। उन्होंने नीचे पाँव हिलाते हुए नेतानुमा आदर्शवादिता वाले अंदाजे-बयाँ में कहा, 'तुम लोग कल के भविष्य हो। मुझे युवा शक्ति का इस प्रकार अपव्यय होना बिल्कुल पसंद नहीं। ये बिलावजह का खून-खराबा और अपराधकर्म छोड़कर आदर्श नागरिक क्यों नहीं बनते?'

सचिन, जिसके चेहरे पर पीटे जाने की स्पष्ट छाप थी, चुपचाप सीलिंग फैन का नाचना देखता रहा। फिर नाक का खून बाँहों से पोंछकर तिरस्कार-भरे स्वर में बोल पड़ा, 'आपको यह बात समझ में नहीं आएगी दारोगाजी, आप अपने लड़के को भेज

दीजिए, उसे समझा दूँगा।'

दारोगाजी एकबारगी अप्रतिहत हो उठे। उन्होंने थूक निगला और कंधे उचकाकर झेंप झाड़ते-से बोले, 'दैन आ'म हेल्पलेस!'

वह थाना भैया के अधिकार-क्षेत्र में आता था। मैंने राखाल बाबू को यह आश्वासन देकर विदा किया कि भैया से कहकर सचिन के लिए कोई कोर-कसर उठा नहीं रखूँगा। भैया के पास पहुँचा तो उन्हें बात करने-भर की फुरसत नहीं थी। कोई पार्टी चल रही थी वहाँ, किसी मंत्री के दौरे के बाद। संभवत: आमंत्रित मेहमान पुलिस विभाग के ही लोग थे। मेरा परिचय और रिसर्च का उद्देश्य जानते ही चर्चा उतर पड़ी पुलिस पर... कि विदेशों में पुलिस को कितना वेतन, अत्याधुनिक उपकरण और सुविधाएँ तथा सम्मान प्राप्त हैं।

'मगर यहाँ की तरह वहाँ के पुलिस स्टेशन अपराध के ब्रीडिंग स्टेशन तो नहीं है!' मैंने हस्तक्षेप किया। मेरी बात को एक वरिष्ठ अधिकारी ने 'हो-हो-हो-हो' हँसकर उड़ाते हुए कहा, 'अमाँ यार, हमीं पर सारी तोहमतें क्यों? हम तो नाचने वाले हैं, नचाने वाला कोई और है।'

'कुछ इसी से मिलती-जुलती बात वे अपराधी भी कह रहे थे, जिनसे शोध के दौरान मैं मिला।'

'क्या?' मेरी बात पर तकरीबन सारे लोग मेरे आस-पास जमा हो गए थे।

'कहते थे....हम तो वेश्या है। सब छुप-छुपकर मिलते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। मगर बाहर शान दिखाने के लिए हमें गाली देते हैं।'

'राइट! अब हमारा ही देखा जाए। एक ओर तो हमारी अक्षमता के लिए हमें कोसा जाता है, दूसरी ओर हमारे काम में टाँग अड़ाई जाती है। एक उदाहरण लीजिए-हमने किसी गुण्डे को पकड़ा। अब हर गुण्डा किसी-न-किसी एम.एल.ए., एम.पी., सेक्रेटरी या मिनिस्टर वगैरह का आदमी, या आदमी का आदमी निकल आता है। फोन पर फोन! आखिर वह बेदाग छूट जाता है... फिर क्या रह गई हमारी इज्जत! कभी-कभी तो ईमानदारी की कीमत हमें सस्पेंशन में चुकानी पड़ जाती है।'

'एक तरफ कहेंगे, पुलिस को अपना आचरण बदलना चाहिए, दूसरी तरफ गंदे से गंदे काम के लिए इस्तेमाल करेंगे।' दूसरे कद्दावर अधिकारी ने कहा।

'यानी पुलिस अपने गलत कामों के लिए स्वयं दोषी नहीं है... यही न?'

इस पर एक सन्नाटा-सा खिंच गया। शराब के नशेमें एक इंस्पेक्टर बहकने लगा, 'अरे साब! सत्ता के इस थोड़े-से सुख में हमने अपना क्या-क्या नहीं गँवाया... जाति, धर्म, ईमान, सभ्यता, संस्कृति!... कहने को तो अपने थाने के सामने हमने भी लिखकर टँगवा दिया है-'हम आपके सेवक हैं, हमारे योग्य कोई सेवा?' मगर सेवक की विनम्रता से काम करें तो हो गई छुट्टी। हमें ऑड, ऱ्यूड, क्रूड बनकर स्लैंग। लैंग्वेजेज इस्तेमाल करनी पड़ती हैं, जल्लाद की तरह पेश आना पड़ता है, इसलिए एक अलग ही डिक्शनरी होती है हमारी, एक अलग ही आचार-संहिता होती है और अलग ही चरित्र होता है हमारा। सब-कुछ अलिखित, पर व्यावहारिक!'

काफी रात गए भीड़ छँटी तो भाभी ने टोका, 'कब तक छुटुवा घूमते रहोगे सिद्धार्थ! तुम्हारी यधोधरा रानी कब आएँगी?'

'रानी!' जेहन में नाच उठी 'रानी' ऐसो आमार राजकुमार, ऐसो ना...! एक मदिरिल सपना अँगड़ाई लेता हुआ पानी में रूपहले बिम्ब-सा थरथराया। सोचा, सचिन की बात भैया से शुरू कर दूँ, मगर इस बीच फोन घनघना उठा और ऐसी बेवकूफी करने से बच गया। भैया फोन अटेण्ड करके आए तो कपड़े बदलने लगे, बोले, 'तुम आए, कोई बात भी न हो सकी और उधर बुलावा आ गया... कोई खून हो गया है... फौरन पहुँचना है... कहाँ यह सोने की रात... ढीले कपड़े पहने वे मंत्री लोग सो रहे होंगे, जिनकी सुरक्षा-व्यवस्था के लिए सात दिनों से मुझे तथा डी.एम. को चैन नहीं था... और कहाँ ये पम्प-शू नुमा भारी बूट, क्रीजदार चुभती पैण्ट और शर्ट, स्टार्स, बेल्ट, रिवॉल्वर वगैरह लेकर खूनी डाकुओं, खतरनाक नक्सलियों के पीछे मारा-मारा फिरूँ... तुम्हें कैसे बताऊँ!'

भाभी का मजाकिया मूड उखड़ चुका था। वे बोलीं, 'देखो, अपने को बचाना। बाहर तुलसी-चौरा पर मत्था टेकते जाना!' और भैया, भाभी की आज्ञा का पालन करते हुए चले गए। एक मातमी तनाव तन उठा। भाभी बड़ी देर तक रुआँसी, उनकी खैर मनाती हुई, जिस-तिस को कोसती रहीं... 'ये आठ-नौ सौ की तनखा पर रात-रात भर खतरनाक अपराधियों का पीछा करना... लानत है ऐसी नौकरी पर! ब्लैक करने वाले सेठ, महीने-भर में लखपति बनने वाले इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स, व्हीकल्स लाइसेंस वाले आराम से सो रहे होंगे। वे नेता तक किसी खरीदी हुई कनीज को चिपटाए, नमर बिछौने पर सो रहे होंगे, जिनके लिए सारे प्रोग्राम साइडट्रैक करके उनकी सुरक्षा के लिए बैण्ड बजाने वालों की तरह गुलाम बनकर आगे-पीछे चलना पड़ा। और वे... ऐसे में कहीं कुछ हो गया तो...? देवरजी, तुम चाहे कुछ भी बनना, पुलिस अफसर कतई

मत बनना।'

शुक्र था कि भैया सुबह तक सही-सलामत आ गए। थकावट के बावजूद मूड अच्छा देखकर जाते-जाते मैंने सचिन की बात छेड़ ही दी। मैंने उसके निर्दोष और ईमानदार होने की बात कहकर सचिन की रिहाई की बात की तो उनका मूड उखड़ गया।

'कल से ही देख रहा हूँ, मेरी नौकरी खाने पर तुले हो। इन चोर-डकैतों के लिए मैं हस्तक्षेप करूँ, तुम्हें हो क्या गया है?' वे घुड़क उठे।

मन में तो आया कि पूछूँ, अगर किसी मिनिस्टर ने किसी गुण्डे के लिए यही बात कही होती तो वे क्या करते! मगर चुप रह गया। बाद में सुना, एक पूरे के पूरे नक्सल गाँव को आग लगा देने के पुरस्कार स्वरूप उनकी तरक्की हो गई थी।

याद आते हैं न्यायालयों के आँकड़े बटोरते वे भटकते हुए दिन। ग्राम पंचायतों के बने-बनाए फार्मूलाबद्ध न्याय प्रहसन, दीवानी और फौजदारी की रबर से भी लचीली और खिंचती हुई कार्रवाइयाँ। ऊँची कुर्सी पर बैठे अपनी तमाम ताम-झाम के बावजूद श्रीहीन जज, सरकारी और मुद्दई पक्ष के वकीलों के बहसने और विहँसने की कलाएँ। न्याय-मंदिरों के कितने ही मंजर किसी डॉक्यूमेंटरी फिल्म की तरह यादों के परदे पर उभरने लगते हैं... न्याय की प्रत्याशा में आगत... ऊबती, मुरझाती भीड़, मिठाइयों की दुकानों पर डकारती और ललकारती हुई नकली गवाहों की टोलियाँ, पुराने परचे और कागजातों के बंडल सँभाले अहलमद और मुनीम, रण्डियों के दलालों की तरह आसामी फँसाते हुए वकीलों के दलाल, काले कोट पहने हुए वकीलों की चहलकदमी, बीच-बीच में 'आसामी हाजिर हो' की आवाज लगाता कोर्ट अर्दली, ड्रायर खोलकर दो-दो रुपयों पर फर्जी मुकदमों की तारीख बढ़ाते पेशकार।

वे सर्दियों के दिन थे। कटखनी शीतलहर चल रही थी। मैं कचहरी के बाहर धूप में पापा के एक मित्र से बात कर रहा था कि एक रिक्शा रुका आकर मेरे पास। देखा तो जर्जर-क्लाण्त राखाल बाबू उतर रहे थे। काँपते हुए उन्होंने एक नजर चारों तरफ का मुआयना किया, फिर एक कोने में मुझे ले आए।

'बड़ी मुश्किल से मिले... कहाँ-कहाँ नहीं पता लगाया मैंने!'

'कोई नई बात...?'

'हाँ, सचिन का मुकदमा तुम्हारे बाबा (पापा) के पास आए, ऐसी व्यवस्था मैंने कर ली है।'

'अच्छा!'

'बाकी तुम्हें देखना है। मैं मरने के पहले उसे निर्दोष देखना चाहता हूँ। मेरा बेटा, मेरी बेटी निर्दोष हैं।'

'आपको सेनिटोरियम छोड़कर इस तरह नहीं आना चाहिए था, उनके लिए भी आपको जिन्दा रहना है।' उन्हें रिक्शे पर बैठाकर मैं उसी दिन पापा के पास चला आया।

पापा मुझे आया देखकर खुश हुए। शोध के विषय में मेरी प्रगति पर सण्तोष जाहिर करते हुए, 'न्याय' के प्रति मेरे दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए बोले, 'देश-भर में जाने कितना अन्याय होता है और उसमें से जाने कितने आ पाते हैं हमारे पास और जाने कितनों का सही फैसला कर पाते हैं हम! अब देखो, वकील न्याय के देवदूत हैं और इनका चरित्र...! जो जितने भयंकर अपराधी को, जितनी जल्दी निरपराध सिद्ध कर दे, वह उतना ही सफल वकील है। फिर जज का दिल और दिमाग, न्याय की व्यवस्था भी कम करामाती नहीं है। एक कोर्ट से जो हार जाए, दूसरी कोर्ट से जीत जाता है। पेनलकोड में कई धाराएँ तक त्रुटिपूर्ण हैं।'

'यानी न्याय वह तरल पदार्थ है जिसे जिस पात्र में ढाल दें, वैसा ही ढल जाएगा।'

'साहित्य में तुम्हें जोर आजमाना चाहिए।' पापा हँस पड़े थे।

'और सोने और चाँदी के पात्रों में यह ज्यादा शोभता है।' पापा की हँसी मुरझाने लगी। वे चौकन्ने हो गए, 'कुछ कहना चाहते हो?'

'पच्चीस तारीख को जिसका मुकदमा आपकी आदलत में पेश होने वाला है, वह अपराधी नहीं है। मानवता के प्रति पूरी तरह निष्ठावान युवक है।'

'यू मीन दैट नक्सलाइट?'

'जी, चूँकि आप एक पिता है, अत: पिता के दिल का दर्द समझते हैं। टी.बी. से मरणासन्न पिता की एक ही ख्वाहिश है कि वह अपने निर्दोष बेटे को निर्दोष बरी देखकर मरे।'

पापा ने सिगार जला लिया। कुछ देर तक खाली-खाली आँखों से दीवारों पर देखते रहे, फिर एक सधी हुई आवाज में बोले, 'बेटे, हम जिसे न्याय कहते हैं, वह तथ्य-सापेक्ष है, सत्य सापेक्ष नहीं है। तथ्य का प्रमाण स्वयं में सामर्थ्य-सापेक्ष है, अत: निर्णय लचीला होता है। हमारा तो यूँ जान लो, बस एक दायरा होता है... पुलिस एफ.आई.आर. प्रस्तुत करती है, चार्जशीट पेश करती है, गवाह होते हैं, अपराध के

सबूत, अभियुक्त की सफाई का दौर आता है, वकील होते हैं, कानून की किताबें होती हैं। इन सबमें से परत-दर-परत जो निष्कर्ष छन-छनकर आता है, हम वही निर्णय तो दे सकते हैं... और फिर तुम जिसकी सिफारिश करने आए हो, उसका तो मुकाबला ही सत्ता से है, जो हमेशा न्यायपालिका पर हावी रहती है!'

'यानी आपके सिद्धांत बाँझ है?'

पापा गंभीर हो गए। बोले, 'देखो, खून मेरी रगों में भी बहता है, पर मैं तुम्हारी तरह मूर्ख और भावनाजीवी नहीं। तुम्हें मालूम नहीं होगा, सी.बी.आई. वाले कब के तुम्हारे विरुद्ध कदम उठा चुके होते... बचते आए हो तो अपने जीजाजी के चलते। लेकिन यही रवैया रहा तो...आई फाइनली वार्न यू टु मेंड योरसेल्फ!' बुझा सिगार फेंककर वह उठकर बेचैनी में चलने लगे और मैं सर पकड़कर बैठ गया।

मुकदमे का निर्णायक दिन भी आ गया। वकील के लाख समझाने के बावजूद सचिन ने एक शब्द तक न कहा अपनी सफाई में, सिवाय उस बयान के, जो जब भी यादों को कुरेदता है तो हर्फ-दर-हर्फ विस्फोट करता शोलों के अम्बार भर देता है जेहन में, 'मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय-व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है, वह लुटेरों, पण्डों और जूता-चोरों से भरा पड़ा है। यहाँ आते ही चपरासी, अहलमद, नाजिर, पेशकार, कानूनगो से लेकर काला लबादा ओढ़े वकील और गीता तथा गंगाजल की कसमें खाकर झूठी गवाहियाँ देने वाले गवाह, ये तमाम कुत्ते नोचने-खसोटने लगते हैं उसे। ये लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचहरियाँ... इन पर कितने बेकसूरों का खून पुता है। वकीलों और जजों का काला गाउन न जाने कितने खून के धब्बों को छुपाए हुए है! परिवर्तन के महान रास्ते में एक मुकाम ऐसा भी आएगा, जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा, वरना इनकी रोबीली बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएँगी!'

वकील जोरों से चीख पड़ा, 'योर ऑनर, दिस इज क्लियरली द कॅण्टेम्प्ट ऑफ कोर्ट!'

बाहर शोर मच गया। जज की कुर्सी पर बैठे पापा चीख पड़े, 'ऑर्डर! ऑर्डर!!' और मुद्दई पक्ष का वकील सचिन को पागल साबित करने में लग गया, ताकि उसे बचा सके।

सचिन को अपराधी करार देते हुए सजा हो गई। फैसला सुनते ही मेरे पास ही बैठे राखाल बाबू फफक-फफक कर रो पड़े। मुझे याद है, मैंने उन्हें सहारा देकर रिक्शे पर

बैठाया था। बाद में हमने सुना कि जेल से जाते समय, रास्ते में ही पेशाब करने के बहाने, जंगलों में सचिन ऐसा गायब हुआ कि पुलिस ढूँढ़ती रह गई। रोग और चिन्ता से जर्जर राखाल बाबू यह सदमा बरदाश्त न कर पाए और 'रानी' और 'बुलबुल' को निर्दोष देखने का सपना लिए हुए ही दुनिया से चले गए। पुलिस उनकी मृत्यु के दो दिन बाद तक सेनिटोरियम के चारों ओर सादे लिबास में घूमती रही, मगर न रानी आई, ना बुलबुल! लाश जब सड़ने लगी तो पुलिस की मदद से सेनिटोरियम वालों ने ही उसकी अन्त्येष्टि की।

और अब नारी-निकेतन, बाल अपराध सुधार-गृह, रिफॉर्मेटरीज होते हुए कारागृह! ऊँची-ऊँची दीवारें, सलाखोंदार मजबूत फाटक, अपराधी-कैदियों का समुद्र! कोने-कोने पर ऊँचे मचानों पर बन्दूक साधे ऊँघते सिपाही! विभिन्न सूत्रों से पता लगा था कि सचिन नाम का एक बंगाली युवक और संघमित्रा नाम की एक औरत, कुछ दिन हुए ट्रांसफर होकर, सेंट्रल जेल में आए हैं। जल्द ही मैंने शोध के निमित्त सेंट्रल जेल जाने की अनुमति प्राप्त कर ली।

विशाल रकबे में बिखरी दुर्भेद्य बदसूरत दीवारों से घिरी केन्द्रीय कारा! कारा अधीक्षक, जो मेरे मजिस्ट्रेट भैया के मित्र थे, मुझे बताते चल रहे थे, 'यह जेल भारत की सबसे बड़ी जेलों से एक सेल्यूलर जेल है। साइकिल स्पोक्स की आकृति में फैले हुए सेल धुरी पर केन्द्रीभूत हो उठते हैं, जहाँ से कण्ट्रोल टावर इन सब पर निगरानी रख सकता है। ये रहे कारखाने... कपड़े, दरियाँ, काठ और लोहे के छिटपुट सामान बनाते हुए, ये रही लायब्रेरी, वह रहा मेडिकल, यह रहा पागलों का दड़बा, यह विशाल भीड़, जो देख रहे हो... ये रहे हाजती। उधर उन अलग-अलग कतारों में रहते हैं स्टेट प्रिजनर्स... बड़े-बड़े नेता, विद्वान्, लेखक रह चुके हैं यहाँ!' एक नजर मेरे ऊपर पड़े प्रभाव का मुआयना करके वे फिर शुरू हो गए, 'ये पार्टीशन जनाना सेल के लिए है। कोई पसंद आए तो बोलना।' अपने ही मजाक पर वे 'खीं-खीं' करते हुए हँस पड़े और दीवार के पास मेरी कल्पना में संघमित्रा उभरने लगी... मगर तत्क्षण ही स्वराघात से टूट गई।

'यह रहा 'टी-सेल'... सबसे खतरनाक अपराधी यहाँ रखे जाते हैं। किस प्रकार के कितने कैदी हैं, उनकी संख्या तुम्हें इस सूची से मिल जाएगी।' उन्होंने दीवार पर टँगी सूची की ओर इशारा किया, 'ये जगह-जगह टँगे हुई हैं। मुझे, अफसोस है, तुम्हें हम फाँसी के किसी कैदी से नहीं मिलवा सकेंगे।' हँसते हुए उन्होंने सूची में मृत्युदण्ड दण्डित कैदियों के आगे इशारा किया, वहाँ क्रॉस लगा हुआ है। कण्ट्रोलिंग टावर पर से

उन्होंने मुझे दूर स्थित फाँसी के मंच और वीरान कंडेम्ड सेल भी दिखाए।

'कहाँ-कहाँ जाना है, क्या-क्या सवाल कर सकते हो, इसकी शर्तें तुम्हें दी जा चुकी है, फिर भी एहतियात के तौर पर बता दूँ, सेल नंबर 15, 16, 17 में मत जाना... नक्सली सेल है।'

कुछ ही दिनों में उन सबसे ऊब गया। सफेद धोती, हाफ कमीज, टखनों कि का पाजामा...मेरी पारदर्शिनी नजर इनमें अपराध के चह्नि ढूँढ़ने में असफल रही। यह सवाल बराबर कोंचता रहा कि आखिर कौन-सी मजबूरी है कि लोग अपराध में प्रवृत्त हो जाते हैं... और वह कौन-सी विभाजन-रेखा है, जिसके तहत ये शिनाख्त किए जा सकते हैं। सारा मामला सरसों में भूत जैसा विरोधाभासों से ग्रस्त था। नारी निकेतन, बाल अपराध सुधार-गृह और रिफॉर्मेटरीज के सिद्धांतों और आचरणों में गहरी खाई थी। कैदियों के नाम पर मिलने वाला राशन खाते हुए जेल के कर्मचारी, के भेंट बन-बनकर राज करते हुए धाकड़ दादा कैदी, उसके तथा जेल के जरखरीद गुलाम बने रिसते और पिसते हुए पिद्दी कैदी, वही वर्ग-विभाजन, वही वर्ण-विभाजन, जेल की बदसूरत ऊँची प्राचीरों में घुटकर रह जाने वाली यातनाओं की चीखें और अलमारियों में करीने से सजी, पर जाले की जंजीरों में बँधी जेल मैनुअल्स की पोथयाँ! वह सेल्यूलर जेल मुझे मकड़ी के जाले जैसा लगा। रेशे-रेशे में आ बिंधे थे इंसान और बीच में मकड़ी के स्थान पर खड़ा था कंट्रोलिंग टावर!

जज्बातों की तरह जलते हुए दिन कैदियों के समुद्र में डूबते-उतराते, सन्तरण करते हुए बुझ रहे थे और दु:स्वप्नों जैसी नाउम्मीद लम्बी रातें पुलिस मैनुअल्स, जेल मैनुअल्स, सोशोलॉजी, साइकोलॉजी, आँकड़ों, ग्राफों में तिरोहित हो रही थीं। मेरी एक खोज पूरी हो रही थी और एक का कूल-किनारा भी नजर नहीं आ रहा था। डिस्पैरेट होकर एक दिन जेल सुपरिटेंडेंट के दफ्तर में जा पहुँचा। वे उस समय एक नवागत नक्सली कैदी से जाने क्या उगलवाने के चक्कर में परेशान हो रहे थे। मेरे सामने एक ही जोरों का मुक्का उसके जड़ों पर पड़ा और उसका चश्मा दूर जा छिटका। वे फिर से बड़ी निर्दयतापूर्वक उसके बालों को पकड़कर नचाने लगे। मुझे देखा तो वापस ले जाने का हुक्म देकर बैठ गए। नक्सली युवक अपना खून पोंछने की बजाय अपना चश्मा टटोलने लगा। चश्मे के अभाव में उसकी स्थिति अंधे जैसी हो रही थी। मुझसे रहा न गया। मैंने स्वयं चश्मा उठाकर उसे दिया, तो पता चला, उसके काँच दरक चुके थे।

'साले ने मूड ऑफ कर दिया। हाँ, तुम कहो अपनी...' जेल अधीक्षक प्रकृतिस्थ होने की कोशिश में मुस्काए।

'मुझे संघमित्रा और सचिन से मिलना है... जरूरी तफतीश के लिए।'

'सचिन से तो नहीं मिल सकते, ऊपर से बिना अनुमति प्राप्त किए। हाँ, संघमित्रा को बुलवाए देता हूँ।' उनके हुक्म पर थोड़ी देर में एक मेट एक युवती को लेकर उपस्थित हुआ।

'लो, आ गई!' वे भद्दे अंदाज में मुस्कराए।

'इसे वापस पहुँचाने को कह दीजिए।' मैं झुँझला पड़ा, 'मुझे जिस संघमित्रा की तलाश थी, वह यह नहीं।'

'बड़ा संगीन अपराध किया है उसने तुम्हारे साथ... ऐसा लगता है। मगर तुम उसे जेल में क्यों ढूँढ़ते फिर रहे हो?'

'फिर बताऊँगा कभी।' निराशा में मेरे होंठ जड़ हो रहे थे। संघमित्रा मेरे लिए अब भी मरीचिका ही थी।

आखिर वे क्षण आ गए, जबकि प्रतिबंधित सेलों का तिलस्म सैलाब बनकर जेल की दीवारों के बाहर बहने लगा। दीवाली की रात थी वह। क्रेकर और आतिशबाजियाँ छूट रही थीं। मगर जेल के अंदर भला क्यों...? और वह दहशत-भरी पगली घंटी पर पगलाता हुआ पुलिस दस्ता! अंदर के कई फाटक तोड़कर नक्सली अब सदर फाटक पर बम बरसा रहे थे। पुलिस के सिपाहियों ने कई एक को जमीन पर सुला दिया, मगर वे सामूहिक रूप से पुलिस दस्ते से भिड़ गए और थोड़ी ही देर में बन्दूकें उनके हाथों में थीं। लगा कि फाटक अब टूटा कि तब। तभी हमने देखा, कैदियों की विशाल भीड़, जो बंदूकों और अन्य शस्त्रों से लैस थी, नक्सली कैदियों पर टूट पड़ी। सदर दरवाजे के ऊपर के दोमंजिलों की खिड़की से मैंने वह रोंगटे खड़े कर देने वाली कैदियों की लड़ाई देखी। थोड़े ही देर में फूलों और सब्जियों की क्यारियाँ, बजरी की सड़कें लाशों और घायलों से पट गईं। माइक से जब यह ऐलान किया गया कि बाकी कैदी नक्सल कैदियों को उनके सेलों में पहुँचाकर, अपने-अपने वार्डनों के पास गिनती के लिए चले जाएँ, तो घायल और बचे-खुचे नक्सली कैदियों को ढोर डंगरे की तरह मारते और हाँफते हुए कैदी लौट पड़े।

थोड़ी देर बाद अधीक्षक महोदय के दफ्तर में प्रतिबंधित नक्सली सेलों का एक वार्डन पूरी कहानी बताने लगा, 'गश्त का सिपाही जमुनालाल जब एक नक्सल कैदी नं. सात सौ पचहत्तर...' मैं चौंका, 'सचिन!' 'जो भी हो' उसने बात आगे बढ़ाई, 'उसके कमरे को संदिग्ध जान खोलकर देखना चाहा तो उसने जंजीर बँधे हाथों का फँदा

लगाकर उसके गले को कस दिया। फिर उसकी जेब से चाबी निकालकर सेल नं. सत्रह को आजाद कर दिया। इसी तरह शायद और सेल भी... दीवाली की रात होने के नाते थोड़ी गलतफहमी भी हुई। साब, अगर मेट ने चालाकी करके बिना पूछे ही तमाम खतरनाक अपराधियों को नहीं छोड़ दिया होता, उन्हें ठंडा करने को, तो नाक कट ही गई होती।'

'स्टील टर्निंग्स तो लेथ और ड्रिल मशीनों से उन्होंने बरामद किया होगा, मगर पिक्रिक एसिड, पोटाश वगैरह...??' बम के एक खोल को देखते हुए अधीक्षक गुस्से से पागल हो गए। डर के मारे लोग सन्नाटे में आ गए। वे दहाड़ने लगे, 'पुलिस की जात साली ठीक ही घूस के लिए बदनाम है। जरा-से पैसों के लिए साले बिक गए, वरना जहाँ परिंदा तक पर नहीं मार सकता, वहाँ बम आ जाए!' धीरे-धीरे लोग खिसक गए। मृत और धायलों को शहर भेज दिया गया और दीवाली की रात मातम की काली रात बनकर डसने लगी हमें। बचपन में यदा-कदा दूर से काली मन्दिर की पाठशालाओं को देखा करता था, जहाँ गुरुजी लड़कों से ही श्रेष्ठ हुआ करते थे। और यहाँ चोर, डाकू, व्यभिचारी, सजायाफ्ता कैदी, बुद्धिजीवी नक्सलियों को पीट रहे थे। मुझे अपराध और अपराधी का वृत्त फैलता-सा लगा। मन रुआँसा हो चला, न खाना गले से नीचे उतरा, न किसी से बात ही करने को जी चाहा। तन और मन की हरारत टायफायड में तब्दील हो गई और मैं एक लंबे अरसे तक बीमारी से निबटने और स्वास्थ्य-लाभ करने में लगा रहा। इस बीच मेरे गाइड 'हेड साहब', शोध को देखकर, 'यूनीक' करार दे गए थे। जेल अधीक्षक मेरे पापा के प्रभाव के कारण मुअत्तल होने से बच गए थे। उनकी कृपा से प्रांत की सारी जेलों की महिला कैदियों की सूची मैंने देख ली थी। संघमित्रा का पता नहीं चल सका था। शोध का काट समेटने की गरज से, जिस दिन पुनः केन्द्रीय कारा पहुँचा, तो पापा की जल्दी वापस आ जाने की हिदायती चिट्ठी और नक्सली सेलों में एक बार जाने की अनुमति-पत्र साथ ही मिला।

मेरे प्रतीक्षित दिवस का एक-एक दृश्य टँगा है आँखों के सामने। मेरे साथ-साथ पुलिस का एक सिपाही, सेल नं. सत्रह का वार्डन और मेट भी चल रहे थे। मेरे हाथों में शोध की फाइल थी। सारे के सारे कैदी जवान थे और निचुड़े चेहरों के बावजूद मस्त थे। वे हमें देखकर अजीब ढंग से सीटियाँ बजा रहे थे। कुछ पूछने पर कहते, 'कहाँ का पिल्ला टहल रहा है?' बहनोई खोजने चला है शायद!... यह चलेगा...?

मेट बताने लगा, 'एन्क्वायरी कमीशन के सामने भी इनकी यही गंदी हरकतें रही। आप सोच सकते हैं, उसमें क्या हुआ होगा' एक कमरे के सामने रुक गया वार्डन।

सलाखोंदार फाटक के अंदर से झाँकते सचिन को मैं सहसा पहचान न पाता, अगर वार्डन ने बताया न होता। उसके हाथ-पाँव जंजीरों से बँधे थे। बढ़े हुए रूखे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, कोटरों में धँसी जलती आँखें और बढ़े हुए नाखून... कुल मिलाकर कोढ़ियों की शक्ल दे गए थे। आत्मीयता में डूबते-उतराते मैं बोल पड़ा, 'सचिन, मुझे पहचानते हो, मैं...!'

'हाँ-हाँ, पहचानूँगा क्यों नहीं... खूनी जज का बेटा, लुटेरे और मक्कार एस.पी. और मजिस्ट्रेट का भाई, बदलते भ्रष्ट मंत्रियों के शाश्वत गुलाम सेक्रेटरी का साला!'

मैं किंचित् अप्रतिभ हुआ, पर उसकी बात हँसकर उड़ा दी, 'बुलबुल, सच मानो, मेरा कोई बुरा इरादा नहीं है, क्राइम पर शोध कर रहा हूँ। तुम्हारा एक इंटरव्यू...!!'

'पूछो।'

फाइल खोल कलम निकालकर पूरी गंभीरता से मैंने सवाल किया, 'लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए या अत्याचार के खिलाफ अस्त्र उठाते हैं, तुम लोग सामूहिक स्वार्थ और एक्सप्लायटेशन के खिलाफ... मगर करते हो तुम भी अपराध ही। क्या हिंसा से हिंसा को और नफरत से नफरत को दबाया जा सकता है?' सवाल के शेष होते न होते उसने अभद्रता से पाद दिया। मैं भिन्ना उठा। मुझे नफासत सिखाने वाला सचिन क्या यही था! मैं बिफर पड़ा, 'मेरा अपमान करने से सवाल नहीं टल जाएगा बुलबुल, तुम लोग किसी पर तो विश्वास करोगे...! यह संशय का महाभारत कब तक?'

'माफ करना यार, इतना गरिष्ठ सवाल सुनकर पेट में जरा गैस हो गई थी। इतनी भारी बातें पच नहीं पातीं?' फिर उसने लहजा बदलते हुए पूछा, 'तो तुम पी.एच.डी. पाओगे न?'

'हाँ! मैं उसके तेवर को तौलने लगा।

'फिर कोई ऊँचा ओहदा...?'

'शायद!'

'जरा फाइल देख सकता हूँ?'

मैं पहले हिचका। मगर उसकी पुरानी अन्तरंगता का ख्याल करके फाइल उसे दे दी, फिर मन की लालसा ज़बान पर आई, 'बुलबुल, प्लीज बताओगे रानी कहाँ है?' मेरी बात जैसे उसने सुनी ही नहीं। फाइल के पन्ने पलटते हुए बोल पड़ा, 'तो तुमने इतने विभिन्न प्रकार के अपराधियों और कैदियों का अध्ययन किया है?... वाह!... और यह

दार्शनिक पक्ष... टैपेन, रेकबेस, मारिस, टैफ्ट, कोल्डराइन, प्लेटो... कमाल है! इत्ते-सारे आँकड़े, ग्राफ्स, काम्पेरेटिव एण्ड रिलेटिव एनलिसिस... सर्वे... जेल में मिले इन लोगों से?'

'हाँ!' मैं फूल गया अपनी प्रशंसा पर। मगर एकाएक उसे जैसे सन्निपात हो गया, 'तो तुमने इतने कैदियों का अपमान किया है!... और इस अपमान को भुनाकर तुम सम्मानित होना चाहते हो!... इसीलिए यह दलाली और सवालों के चोंचले! तुम्हारी नीयत अपराध मिटाने की नहीं, उस पर फलने-फूलने की है! मैं पूछता हूँ, किसने तुम्हें आने दिया अंदर? इसे चिड़ियाखाना समझ रखा है क्या? इजण्ट टोटली इन्ह्यूमेन टू एंज्वाय एण्ड कैश ए प्रिजनर्स ट्रेजडी? इजण्ट मोस्ट हीनियस क्राइम... आई आस्क! आई वोंट एलाउ यू!'... उसने फाइल उठा ली। हाथ की जंजीरें झनक उठीं... मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गईं।

'रुको-रुको!' पीछे से कारा अधीक्षक आते हुए बोले, 'मुझे मालूम नहीं था कि तुम इनके दोस्त हो। देखो, डोंट बी इंपेशेंट। अफसोस है, इतने संगीन अपराध तुमने किए हैं कि कोर्ट से कभी भी फाँसी का परवाना आ सकता है। तुम्हारे सामने तुम्हारे मित्र एक आदर्श हैं। तुम अपराध में प्रवृत्त हो और वह उससे निवृत्ति के उपायों पर शोध कर रहा है। अगर तुम अभी से भी रिपेंट करते हुए अपने आप को सुधारो तो राष्ट्रपति के पास मर्सी पेटीशन के तहत तुम्हें बचा लेने में हम कुछ उठा नहीं रखेंगे।' उनका इतना कहना था कि सचिन के मुँह का बलगम उनके मुख पर ताले-सा जा चिपका और फाइल मेरे मुँह पर। पन्ने-पन्ने छितरा गए और मैं पागलों की तरह जल्दी-जल्दी बटोरने लगा, अपनी अमूल्य निधि को।

वार्डन दौड़कर पानी लाने चला गया और मेट और सिपाही, कहीं से दो छड़ लाकर लगे कोंचने और पीटने बेरहमी से उसे... जैसे सर्कस के किसी खूँखार पशु के अचानक हिंसक हो उठने पर सर्कस के नौकर किया करते हैं। वह 'घों-घों' करके चीत्कार कर रहा था। कारा अधीक्षक ने ही न छुड़वाया होता तो शायद उसकी जान लेकर छोड़ते।

सामान जीप में रखा जा चुका था। बस, कारा अधीक्षक की राह देख रहा था। जेलर को कुछ हिदायतें देकर उन्हें लौट आना था। यूँ और दिन होता तो जेल के अंदर ही उनसे मिल आता, पर उस घटना के बाद से मन कैसा-कैसा हो गया था और बीच के तीन दिन, शोध के बिखरे कामों को तरतीब देने के उद्देश्य से, मैं अपने मँझले भैया

के यहाँ गुजारकर आया था। कारा अधीक्षक उदास-सा चेहरा लिए आकर रुके मेरे पास, 'जब तुम पहले-पहल आए थे तो मैंने मजाक किया था कि मुझे अफसोस है, फाँसी के कैदी से नहीं मिलवा सकूँगा तुम्हें... मगर तब नहीं जानता था कि जाते समय मजाक क्रूर सत्य बनकर सामने आएगा।

मैं चुपचाप ताकने लगा उन्हें।

'सचिन को कंडेम्ड में ले जाया गया है। फाँसी तक वहीं रहेगा वह। मिलोगे नहीं उससे जाते समय?' उनकी आवाज भीगी हुई थी।

मेरे होंठ थरथराए, पर आवाज नहीं फूटी। यन्त्रचलित-सा उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। मैंने गौर किया, मुख्यद्वार से कंट्रोलिंग टावर तक की सभी सूचियों में परिवर्तन कर दिया गया था-मृत्युदंड दंडित कैदी, कुल संख्या-एक।

सचिन मुझे देखते ही सींखचों के पास आ गया, 'आज शायद जा रहे हो?' पहल उसी ने की।

'...'

'मेरी फाँसी तक नहीं रुकोगे? व्यवस्था की पीठिका पर टँगे मेरे वजूद के सवालिया निशान से कतराने लगा है तुम्हारा शोध!' उसकी व्यंग्य-भरी हँसी निरुत्तर कर गई मुझे। मैं निर्वाक्-निर्निमेष ताकता रहा उसे।

'रानी को पूछ रहे थे न उस दिन?'

'हाँ!' मेरी सारी चेतना मिसट आई उसके सवाल पर।

'शी हैड बीन ब्रूटली बूचर्ड लाँग एगो।'

'कैसे?' मैं चीख पड़ा।

'उसके गुप्तांग में रूल घुसाकर... मथकर मारा गया।'

'ओह! ओह!!' करहाते हुए आवेग में मैंने सींखचों को पकड़कर झकझोर देना चाहा, मगर वे सर्द और सख्त थे। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। मेडिकल की मेधावी छात्रा, जेनेटिक्स पर रिसर्च करने का दम भरने वाली रानी, एक सामान्य पुलिस के हाथों...क्राइम! लगा, अभी-अभी क्रोंचवध हुआ है। फिजा में दूर-दूर तक दहशत-भरी दर्दनाक चीखें भर उठी है।

इसके बाद न कुछ वह बोल पाया, न मैं। उसने मेरा कंधा थपथपाया... और पथराई आँखों से हम जुदा हो गए।

जेल से अपनी एक पूरी दुनिया गँवाकर लौट रहा हूँ। पता नहीं पापा मेरे शोधकार्य को कैसे भुनाएँगे! मगर शोध अभी हुआ कहाँ पूरा! हाइड्रोजन बम के न्यूक्लियर फीजन की शृंखला की तरह अपराध का रक्तबीज फैलता ही जा रहा है... ठहराव? ट्रेन चली जा रही है और शोध के पन्ने फड़फड़ा रहे हैं मेरे दिमाग में... अनाक्सिमेण्डर काल्डरान के अनुसार क्या यही मान लेना होगा कि मनुष्य का सबसे बड़ा अपराध यही है कि जन्मा होने मात्र से वह दूसरे के अस्तित्व में बाधक है? प्लेटो ने यहाँ तक कहा है कि अपराध भी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। डारविन की 'थ्योरी ऑफ इवोल्यूशन में जिन्दा रहने के लिए सबलों, समर्थों का निर्बलों, असमर्थों पर यही अपराध-भरा संघर्ष नहीं है? हेगेल ने भी क्या संक्रमण और संधात के इसी नायकत्व को नहीं स्वीकारा? मार्क्स की वस्तु और क्रियाओं के घात-प्रतिघात की बात में इसी संघर्ष का दूसरा रूप नहीं है? आगे बढ़ने की अंधी दौड़ में कौन देखने जाता है कि कौन कुचला गया? शायद रानी ही ठीक कहती थी, अपराध खत्म करना है तो नस्ल ही बदल डालो।

दिमाग नाना प्रकार के गड्डमड्ड विचारों से बजबजा उठा है। नाना प्रकार के दृश्यों के बुलबुले उठ-उठकर फूट रहे हैं। आँखों में पूरा का पूरा गाँव धू-धू करके जल रहा है, कंकालनुमा चेहरे किन्हीं अज्ञात पंजों से बचने के लिए बेतहाशा भागे जा रहे हैं, सहमी हुई, कोसती और मनौतियाँ करती भाभी, बड़े और बड़े होते हुए भैया तथा पापा के चेहरे, ढेंठते हुए पुलिस और गुंडे, डकारते हुए नकली गवाह, बाल पकड़ झटके जा रहे... पेट पकड़े नक्सलाइट युवक का दरका चश्मा! ठीक आँखों के सामने रानी तड़प-तड़पकर... ऐंठ-ढेंठकर मर रही है, सचिन को कोंच-कोंचकर मारा जा रहा है। शर्मिंदगी और सन्त्रास और मातम! इनके ऊपर धीरे-धीरे एक सवालिया निशान की तरह झूल रही है... फाँसी के फंदे में सचिन की लाश!

मैं पसीना-पसीना हो उठता हूँ। स्वस्थ होने के लिए खिड़की खोलकर बाहर झाँकता हूँ तो लगता है, अँधेरे की सुरंग किसी रक्तस्नान प्रान्तर में आकर विलीन हो चली है। गाड़ी धीमे-धीमे गंगा के पुल पर रेंग रही है। यानी चंद मिनटों में मेरे स्टेशन में दाखिल हो जाएगी। सुबह की लाली से लाल हुई गंगा देखकर लगता है, आदिम पाषाण युग से खून ही बहता रहा है इसमें! क्या है मेरी और मेरे शोध की सामर्थ्य और सीमा? अपराध की लप-लपाती बर्बर लपटों में...उन्हीं लपटों में, जिनमें आहुति बनकर लाखों करोड़ों निरपराध, निष्ठावान तेजस्वी आत्माएँ, मेरा मित्र, मेरी रानी तक समा चुके हैं, अपने हाथ सेंकने के सिवा यह है क्या? इससे बढ़कर गर्हित अपराध और क्या हो सकता है? कर सकूँगा मैं सत्ता, व्यवस्था और समाज के तमाम अपराधी पुर्जों

को जेल में? शायद नहीं, क्योंकि मैं पैरासाइट हूँ उनका, क्योंकि वे मेरे अपने पिता, भाई स्वजन, मित्र और औजार हैं। फिर यह शोध...? कितना गंदा मजाक है यह शोध! मेरे हाथ लहराते हैं और शोध की पूरी फाइल छपाक से गंगा में जा गिरती है। लगता है, सीने पर पड़ा हुआ अपराध का पहाड़ फिसलकर जा गिरा है गंगा में।

स्टेशन पर उतरते ही अगवानी के लिए आए विभागाध्यक्ष के साथ माँ को देखकर याद आता है...साधु ने शायद ठीक ही कहा था... कि मेरी मौत पानी में होगी!... पूरा भविष्य डुबा दिया है मैंने पानी में और विद्रूप में मेरे होंठ टेढ़े हो उठे हैं।

संजीव

जन्म : 6 जुलाई, 1947, सुल्तानपुर, (उत्तर-प्रदेश)

प्रकाशन : तीस साल का एक सफरनामा, आप यहाँ है, भूमिका और अन्य कहानियाँ, दुनिया की सबसे हसीन औरत, प्रेत मुक्ति, प्रेरणाश्रोत और अन्य कहानियाँ, ब्लैक होल, खोज, डायन और अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) किशनगढ़ के अहेरी, सर्कस, सावधान नीचे आग है, धार, पाँव तले ही दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, सूत्रधार, आकाश चम्पा (उपन्यास)

सम्मान : इंदु शर्मा कथा सम्मान, कथाक्रम सम्मान

पार्टीशन

–स्वयं प्रकाश

आप कुर्बान भाई को नहीं जानते? कुर्बान भाई इस कस्बे के सबसे शानदार शख्स हैं। कस्बे का दिल है आजाद चौक और ऐन आजाद चौक पर कुर्बान भाई की छोटी सी किराने की दुकान है। यहाँ हर समय सफेद कमीज-पजामा पहने दो-दो, चार-चार आने का सौदा-सुलफ माँगती बच्चों-बड़ों की भीड़ में घिरे कुर्बान भाई आपको नजर आ जाएँगे। भीड़ नहीं होगी तो उकड़ूँ बैठे कुछ लिखते होंगे। बार-बार मोटे फ्रेम के चश्मे को उंगली से ऊपर चढ़ाते और माथे पर बिखरे आवारा, अधकचरे बालों को दाएँ या बाएँ हाथ की उँगलियों में फँसा पीछे सहेजते। यदि आप यहाँ से सौदा लेना चाहें तो आपका स्वागत है। सबसे वाजिब दाम और सबसे ज्यादा सही तौल और शुद्ध चीज। जिस चीज से उन्हें खुद तसल्ली नहीं होगी, कभी नहीं बेचेंगे। कभी धोखे से दुकान में आ भी गई तो चाहे पड़ी-पड़ी सड़ जाए, आपको साफ मना कर देंगे। मिर्च? आपके लायक नहीं है। रंग मिली हुई आ गई है। तेल! मजेदार नहीं है। रेपसीड मिला है। दीया-बत्ती के लिए चाहें तो ले जाएँ।

यही वजह है कि एक बार जो यहाँ से सामान ले जाता है, दूसरी बार और कहीं नहीं जाता। यों चारों तरफ बड़ी-बड़ी दुकानें हैं–सिंधियों की, मारवाड़ियों की, पर कुर्बान भाई का मतलब है, ईमानदारी। कुर्बान भाई का मतलब है, उधार की सुविधा और भरोसा।

लेकिन एक बात का ध्यान रखिएगा जो सामान आप ले जा रहे हैं, उसका लिफाफा या थैली बगैर देखे मत फेंकिएगा। मुमकिन है उस पर कोई खुद्दार या खूंखार शेर लिखा हो। न जाने कितने लोग उनसे कह-कहकर हार गए कि गल्ले में एक कॉपी